भारतीयता की तलाश

आज देश में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता से जुड़ा ज्वलंत प्रश्न सामने खड़ा है। समय-समय और जगह-जगह पर हमें सांस्कृतिक विश्वास एवं अंतर्निहित मान्यताओं के ह्रास की विकृत अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। राजनैतिक परिपेक्ष्य में देखें, तो आर्थिक व्यवस्था की आलोचना करके एक विरोधी समूह गठित कर लेना आसान दिखाई पड़ता है। परन्तु प्रजातांत्रिक भारत की आत्मा पर बहस करना सबसे दुष्कर पहलू लगता है।

भारतीय बनाम आधुनिक

जब भी भारतीयता की तुलना आधुनिकता से की जाती है, तो भारतीय होने को आधुनिक होने में दूर की बात समझी जाती है। अधिकांश लोग पाश्चात्यीकरण को ही आधुनिकता मान बैठे हैं, और वे भारतीयता और आधुनिकता को साथ लेकर चलने का दृष्टिकोण बना ही नहीं पाते। इनमें से अधिकतर लोग वही हैं, जो अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा ग्रहण करके अपनी मातृभाषा से अपना जैविक नाता तोड़ चुके हैं।

दरअसल, भारतीय सभ्यता जटिल है। उपनिवेश काल ने इसके शरीर पर अनेक चोटें की हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् जिन्होंने उदारवादी प्रजातांत्रिक संविधान का निर्माण किया, उन्हें हमारे श्रेणीबद्ध, असमान एवं विभाजित समाज को संविधान सम्पन्न बनाने या दूसरे शब्दों में कहें, तो उन्हें संविधान को स्वीकार करने वाला बनाने में कड़ी मशक्कत करनी पड़ी।

कुछ ने संविधान का विरोध इसलिए किया, क्योंकि इसने उन्हें उनके विशेषाधिकारों से वंचित कर दिया। कुछ को ऐसा लगा कि यह हमारी सांस्कृतिक प्रामाणिकता को नष्ट कर देगा। इस संवैधानिक विचार को चुनौती देने वाले कुछ ऐसे भी थे, जो यह सोचते थे कि इसके समानता और प्रजातंत्र के विचार हिन्दुओं के प्रभुत्व को समाप्त कर देंगे। वर्तमान में उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री का ताजमहल को भारत का प्रतिनिधि न माने जाने का कथन भी ऐसी ही मानसिकता का परिचायक लगता है। लेकिन सवाल यह है कि हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में निचली श्रेणी के लोगों को सल्तनत पूर्व की व्यवस्था एवं आज की प्रजातांत्रिक व्यवस्था में तुलनात्मक रूप से क्या हासिल हुआ? वे तो आज भी वैसे ही दमन का शिकार हो रहे हैं, जैसे उस समय होते थे।

यही स्थिति महिलाओं की है, जिन्हें जहाँ एक ओर ढोर, गंवार और शूद्र के साथ ही ताड़ना का अधिकारी बताया गया, तो दूसरी ओर मनु-स्मृति में उसे पिता, पति व पुत्र के अधीन रखे जाने एवं स्वतंत्र न किए जाने का विचार दिया गया। तो क्या भारतीय परंपराओं के इस अन्याय और असमानता के विचारों के कारण पूरी भारतीय सभ्यता को ही त्याग दिया जाना चाहिए या इसका खंडन किया जाना चाहिए? ऐसा करना बेमानी होगा। यदि ऐसा किया जाता है, तो फिर दासता पर आधारित यूनानी समाज द्वारा उत्पन्न किए गए पायथागोरस के सिद्धांत को भी नकारा जाना चाहिए।

गौरवमयी सभ्यता

प्राचीन भारत दर्शन, गणित, काव्य, कला, चिकित्सा, खगोलविद्या एवं वास्तुकला में सदैव अग्रणी रहा है। इस पक्ष पर गर्व करने से हमें कोई रोक नहीं सकता। मुस्लिम शासकों के आगमन के कारण भारतीय इतिहास और सभ्यता ने अपना दम नहीं तोड़ा। इनमें से बहुतों ने भारत को लूटा-खसोटा, नष्ट किया, लेकिन ऐसे भी बहुत आए, जिन्होंने हमारी सभ्यता एवं परंपरा के सामथ्र्य को बढ़ाया। इस प्रक्रिया में उनका साथ दिया हमारे बहुदेववाद ने, क्योंकि हिन्दुओं ने अपने असंख्य देवों के साथ उनके भी देवों को आसानी से समाहित कर लिया। इन सबके बीच हिन्दुओं के एकेश्वरवाद यानी एक ही सर्जक के दर्शन ने भिन्न-भिन्न आस्थाओं एवं लोगों के बीच के भेद को मिटा दिया। स्थानीय लोगों में इस दर्शन के अभाव में बाहर से आए आक्रमणकर्ता या शासक भारत-भूमि को अपना ठिकाना कभी नहीं बना पाते, न ही समृद्ध हो पाते।

अतः जिस प्रकार किसी जाति विशेष एवं महिलाओं का शोषण एवं अत्याचार भारतीय सभ्यता का ऐसा भाग है, जिसे भविष्य के आधुनिक भारत के निर्माण के लिए नकारा जाना चाहिए, उसी प्रकार प्रजातांत्रिक भारत के निर्माण एवं उसकी मजबूती के लिए शताब्दियों से चली आ रही हमारी सांस्कृतिक धरोहरों का गौरव गान किया जाना चाहिए।

भारत में प्रजातंत्र की सफलता अविवेकपूर्ण सम्प्रदायवाद के माध्यम से नहीं, बल्कि भारतीयता को उसकी आत्मा बनाकर प्राप्त की जा सकती है।

'द इकॉनॉमिक टाइम्स' में प्रकाशित टी.के.अरूण के लेख पर आधारित।